

ब्रह्म, ज्ञान और अहंकार से मुक्ति की यात्रा

अजय तिलन्थे

ॐ केनोपनिषद

प्रमुख मंत्र का सार: ब्रह्म, ज्ञान और अहंकार से मुक्ति की यात्रा.

"उस पर ब्रह्म परमेश्वर को समर्पित है, जो हर जगह और हर वस्तु में विद्यमान है।"

“ॐ असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतं गमय॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥”

असतो मा सद्गमय → असत्य और नश्वरता से सत्य और शाश्वतता की ओर ले चलो।
तमसो मा ज्योतिर्गमय → अज्ञान और भ्रम के अंधकार से ज्ञान और आत्मबोध के प्रकाश की ओर ले चलो।
मृत्योर्मा अमृतं गमय → मृत्यु और पुनर्जन्म के चक्र से अमरत्व और मोक्ष की ओर ले चलो।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः → यह तीन बार "शांति" का उच्चारण है, जो तीन स्तरों पर शांति की कामना करता है:
आध्यात्मिक शांति (मन और आत्मा में)
भौतिक शांति (शरीर और वातावरण में)
दैविक शांति (प्रकृति, देवताओं और ब्रह्मांडीय शक्तियों से)
भावार्थ
यह मंत्र जीवन की सबसे गहरी प्रार्थना है — असत्य से सत्य, अंधकार से प्रकाश और मृत्यु से अमरत्व की ओर मार्गदर्शन की याचना। अंत में "ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः" यह दर्शाता है कि मनुष्य केवल ज्ञान और मोक्ष ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण अस्तित्व में शांति चाहता है।

इसे रोज़मर्रा में अपनाने का अर्थ है: सत्य बोलना, ज्ञान की खोज करना, मृत्यु के भय से मुक्त होकर आत्मा की शाश्वतता को समझना और हर परिस्थिति में शांति बनाए रखना।

प्रस्तावना

केनोपनिषद् उपनिषदों में एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जो सामवेद से सम्बद्ध माना जाता है। इसका नाम "केन" शब्द से लिया गया है, जिसका अर्थ है "किसके द्वारा?" – अर्थात् यह उपनिषद् मूलतः उस प्रश्न से आरम्भ होता है कि मन, वाणी, प्राण और इन्द्रियाँ किसके आदेश से कार्य करती हैं।

यह उपनिषद् हमें यह समझाता है कि समस्त शक्ति और चेतना का मूल स्रोत ब्रह्म ही है। मनुष्य की बुद्धि, इन्द्रियाँ और कर्म केवल साधन हैं, परन्तु उनका संचालन करने वाला अदृश्य तत्व ब्रह्म है। केनोपनिषद् का मुख्य उद्देश्य यह बताना है कि ब्रह्म को न तो इन्द्रियों से देखा जा सकता है, न ही साधारण ज्ञान से समझा जा सकता है; उसे केवल आत्मानुभूति और साधना द्वारा जाना जा सकता है।

संक्षेप में, केनोपनिषद् हमें यह शिक्षा देता है कि परम सत्य को जानने के लिए बाहरी साधनों से अधिक आंतरिक साधना और आत्मचिंतन आवश्यक है। यह उपनिषद् जिज्ञासु को प्रश्न पूछने की प्रेरणा देता है और उत्तर खोजने की दिशा में मार्गदर्शन करता है।

अजय तिलन्थे

शांति पाठ

ॐ सह नाववतु|सह नौ भुनक्तु|सह वीर्यं करवावहै|
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

यह शांति मंत्र हमें यह सिखाता है कि गुरु और शिष्य दोनों ईश्वर की कृपा से सुरक्षित रहें, उनका पालन-पोषण हो, वे मिलकर पराक्रम और उत्साह के साथ अध्ययन करें, उनका ज्ञान तेजस्वी और फलदायी बने तथा उनके बीच कभी द्वेष या मतभेद न हो। अंत में तीन बार "शांति" का उच्चारण करके साधक दैविक, भौतिक और आध्यात्मिक स्तर पर पूर्ण शांति की कामना करता है, ताकि अध्ययन और जीवन दोनों ही सौहार्द, संतुलन और स्थिरता से परिपूर्ण हों।

केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।

केनेषितां वाचमिमां वदन्ति।

चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति॥

अर्थ :

यह मंत्र प्रश्न के रूप में पूछता है कि मन किसके प्रेरित होने से चलता है, प्राण किसके आदेश से कार्य करता है, वाणी किसकी शक्ति से बोलती है और आँख-कान जैसे इन्द्रियों को कौन नियंत्रित करता है–अर्थात् हमारे शरीर और इन्द्रियों के पीछे जो अदृश्य शक्ति काम कर रही है, वह कौन है; यह जिज्ञासा हमें उस परम सत्ता (ब्रह्म) की खोज की ओर ले जाती है, जो स्वयं दिखाई नहीं देती लेकिन सब कुछ उसी के कारण संचालित होता है।

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद् वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।

चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

अर्थ :

यह मंत्र बताता है कि जो शक्ति कानों के पीछे सुनने की क्षमता देती है, मन को सोचने की शक्ति देती है, वाणी को बोलने की क्षमता देती है और आँखों को देखने की शक्ति देती है—वही वास्तविक ब्रह्म है; यानी ब्रह्म इन्द्रियों से दिखाई या समझ में आने वाली वस्तु नहीं है, बल्कि वह वह मूल चेतना है जिसके कारण इन्द्रियाँ और मन काम करते हैं, इसलिए उसे बाहरी साधनों से नहीं बल्कि गहरी आंतरिक समझ और अनुभव से ही जाना जा सकता है।

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनः।

न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात्।

अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि।

इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे॥

अर्थ :

यह मंत्र बताता है कि उस परम सत्य (ब्रह्म) तक न तो आँख पहुँच सकती है, न वाणी और न ही मन उसे पूरी तरह समझ सकता है; हम उसे सामान्य ज्ञान या इन्द्रियों के माध्यम से जान नहीं सकते, बल्कि वह ज्ञात (जो हमें पता है) और अज्ञात (जो हमें नहीं पता) दोनों से परे है—अर्थात् ब्रह्म हमारी सामान्य समझ और अनुभव की सीमाओं से बाहर है, जिसे केवल अनुभूति और गहन आत्मबोध से ही जाना जा सकता है, जैसा कि प्राचीन ज्ञानी लोग बताते आए हैं।

यद्वाचा अनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥

अर्थ :

यह मंत्र बताता है कि जिसे वाणी (शब्द) व्यक्त नहीं कर सकती, बल्कि जिसके कारण वाणी बोल पाती है, वही वास्तविक ब्रह्म है; अर्थात् जो कुछ हम शब्दों, पूजा या किसी रूप में व्यक्त करके उपासना करते हैं, वह परम सत्य नहीं है, बल्कि वह शक्ति है जो इन सबके पीछे काम करती है—इसलिए ब्रह्म को बाहरी रूपों या शब्दों में सीमित नहीं किया जा सकता, बल्कि उसे आंतरिक अनुभव और चेतना के माध्यम से ही समझा जा सकता है।

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम्।

यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ नु मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम्॥

अर्थ :

यह मंत्र कहता है कि यदि तुम सोचते हो कि तुमने ब्रह्म को पूरी तरह जान लिया है, तो वास्तव में तुमने बहुत ही थोड़ा जाना है; जो रूप तुम समझ रहे हो—चाहे अपने भीतर या देवताओं के रूप में—वह पूर्ण सत्य नहीं है, इसलिए तुम्हें अभी और गहराई से विचार (चिंतन) करना चाहिए; अर्थात् ब्रह्म इतना असीम और सूक्ष्म है कि उसे सीमित ज्ञान से पूरी तरह समझ लेने का अहंकार ही अज्ञान है, और सच्ची समझ विनम्रता और निरंतर खोज में ही मिलती है।

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।

यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च॥

अर्थ:

यह मंत्र बताता है कि मैं यह नहीं मानता कि मैं ब्रह्म को पूरी तरह जानता हूँ, लेकिन यह भी नहीं कह सकता कि मैं उसे बिल्कुल नहीं जानता–अर्थात् जो व्यक्ति समझता है कि ब्रह्म को पूरी तरह जान पाना संभव नहीं है और फिर भी वह उसकी अनुभूति की दिशा में बढ़ता है, वही वास्तव में जानने के करीब है; सच्चा ज्ञान अहंकार नहीं बल्कि विनम्रता और यह स्वीकार करना है कि परम सत्य सीमित बुद्धि से पूरी तरह पकड़ा नहीं जा सकता।

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।

अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्॥

अर्थ :

यह मंत्र बताता है कि जो व्यक्ति मानता है कि वह ब्रह्म को पूरी तरह समझ नहीं सकता, वही वास्तव में उसे समझने के करीब है; और जो सोचता है कि वह ब्रह्म को पूरी तरह जान गया है, वह वास्तव में उसे नहीं जानता–अर्थात् परम सत्य इतना सूक्ष्म और अनंत है कि उसे सीमित बुद्धि से पूरी तरह पकड़ने का दावा ही अज्ञान है, जबकि सच्ची समझ विनमता और यह स्वीकार करने में है कि ब्रह्म हमारी सामान्य समझ से परे है।

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त।

त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयः अस्माकमेवायं महिमा इति॥

अर्थ :

यह मंत्र बताता है कि वास्तव में विजय ब्रह्म (परम शक्ति) की थी, लेकिन देवताओं ने उस विजय का श्रेय खुद को दे दिया और अहंकार करने लगे कि यह जीत हमारी है और हमारी ही महिमा है; अर्थात् जब सफलता मिलती है तो मनुष्य अक्सर असली स्रोत (दिव्य शक्ति या वास्तविक कारण) को भूलकर स्वयं को ही कर्ता मान लेता है—यह अहंकार ही अज्ञान है, और यही आगे चलकर सीख का कारण बनता है कि वास्तविक शक्ति हमारे व्यक्तिगत प्रयास से भी परे किसी उच्च सत्ता से आती है।

ते ह अग्निमब्रुवन् जातवेद एतद्विजानीहि किमिदं यक्षमिति।

तथेति॥

अर्थ:

यह मंत्र बताता है कि जब देवताओं को अपनी विजय पर अहंकार हो गया, तब उनके सामने एक रहस्यमय यक्ष (ब्रह्म का रूप) प्रकट हुआ और वे उसे पहचान नहीं पाए; तब उन्होंने अग्नि देव (जातवेद) से कहा कि जाओ और पता लगाओ कि यह कौन है–अर्थात् जब अहंकार बढ़ता है तो मनुष्य सत्य को पहचान नहीं पाता, और तब उसे अपनी सीमाओं को समझने के लिए खोज और जिज्ञासा की आवश्यकता होती है।

तदभ्यद्रवत् तमभ्यवदत् कोऽसि इति।

अग्निर्वा अहमस्मि इत्यब्रवीत् जातवेदा वा अहमस्मि इति॥

अर्थ :

यह मंत्र बताता है कि अग्नि देव उस रहस्यमय यक्ष (ब्रह्म के रूप) के पास गए और उसने उनसे पूछा "तुम कौन हो?", तब अग्नि ने गर्व से उत्तर दिया कि "मैं अग्नि हूँ, जातवेद हूँ"–अर्थात् यहाँ अग्नि अपने सामर्थ्य और पहचान पर गर्व दिखाता है; यह दर्शाता है कि जब किसी को अपनी शक्ति का अहंकार होता है, तो वह अपने वास्तविक सीमित स्वरूप को नहीं समझ पाता और स्वयं को ही सर्वोच्च मानने लगता है, जो आगे चलकर उसकी परीक्षा और सीख का कारण बनता है।

तस्मै स होवाच किम् शक्तिरसि इति।

तदब्रवीत् यदिदं पृथिव्यामिदं सर्वं दहेयं इति॥

अर्थ :

यह मंत्र बताता है कि उस यक्ष (ब्रह्म के रूप) ने अग्नि से पूछा कि "तुममें क्या शक्ति है?", तब अग्नि ने उत्तर दिया कि "मैं पृथ्वी पर जो कुछ भी है, उसे जला सकता हूँ"–अर्थात् यहाँ अग्नि अपनी शक्ति का प्रदर्शन और गर्व करता है; यह दर्शाता है कि जब किसी को अपनी क्षमताओं पर अहंकार होता है, तो वह उन्हें असीम समझने लगता है, लेकिन यही अहंकार आगे चलकर उसकी परीक्षा बनता है और उसे अपनी वास्तविक सीमाओं का ज्ञान कराता है।

तस्मै तृणं निधाय एतद्दहेति।

तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुम्।

स ततो निववृते न एतदशकं विज्ञातुम् यदेतद्यक्षम् इति॥

अर्थ :

यह मंत्र बताता है कि उस यक्ष (ब्रह्म) ने अग्नि के सामने एक तिनका रखकर कहा "इसे जला कर दिखाओ", तब अग्नि पूरी शक्ति से प्रयास करने पर भी उसे जला नहीं सका और वापस लौटकर स्वीकार किया कि वह यह नहीं जान पाया कि यह रहस्यमय यक्ष कौन है–अर्थात् यह घटना दिखाती है कि चाहे किसी के पास कितनी भी शक्ति क्यों न हो, परम सत्य के सामने उसकी सीमाएँ स्पष्ट हो जाती हैं; अहंकार टूटता है और यह समझ आती है कि असली शक्ति किसी उच्चतर सत्ता में निहित है।

तस्यैष आदेशो यदेतद्विद्युतो व्यद्युतद् इति।

न्यमीमिषद् इत्यधिदैवतम्॥

अर्थ :

यह मंत्र बताता है कि ब्रह्म का अनुभव अचानक चमकने वाली बिजली (विद्युत) की तरह क्षणिक झलक के रूप में होता है—एकदम से प्रकट होकर फिर अदृश्य हो जाता है; इसी प्रकार वह पलक झपकने जितने सूक्ष्म क्षण में ही अनुभूत होता है, इसलिए उसे स्थूल इन्द्रियों से पकड़ना संभव नहीं है; अर्थात् ब्रह्म का साक्षात्कार कोई लंबी बाहरी प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक सूक्ष्म और अचानक होने वाली आंतरिक अनुभूति है, जिसे साधक अपनी गहरी चेतना में अनुभव करता है।

अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव च मनोऽनेनैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं संकल्पः॥

अर्थ :

यह मंत्र बताता है कि आंतरिक (अध्यात्म) स्तर पर ब्रह्म की अनुभूति मन के माध्यम से होती है, जो मानो उसकी ओर जाता हुआ प्रतीत होता है और बार-बार उसी का स्मरण (उपस्मरण) करता है; अर्थात् ब्रह्म कोई बाहरी वस्तु नहीं है, बल्कि वह भीतर की चेतना में अनुभव होता है—जब मन बार-बार उसी सत्य की ओर उन्मुख होता है और उसी का चिंतन करता है, तब धीरे-धीरे उसकी झलक मिलती है; इसलिए निरंतर स्मरण, एकाग्रता और आंतरिक ध्यान ही ब्रह्म के अनुभव का मार्ग है।

तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यम्।

स य एतदेवं वेदाभिहैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति॥

अर्थ :

यह मंत्र बताता है कि ब्रह्म का एक नाम "तद्वनम्" है, जिसका अर्थ है अत्यंत प्रिय, पूजनीय और आकर्षण का केंद्र; इसलिए उसकी उपासना उसी भाव से करनी चाहिए–अर्थात् जब कोई साधक इस सत्य को जान लेता है और उसी के अनुरूप जीवन जीता है, तो सभी प्राणी स्वाभाविक रूप से उसकी ओर आकर्षित होते हैं, क्योंकि वह स्वयं उस परम सत्य के गुणों–शांति, प्रेम और संतुलन–का धारण करने लगता है।

तस्य तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यं आयतनम्॥

अर्थ :

यह मंत्र बताता है कि ब्रह्मज्ञान की स्थिरता (आधार) तप (आत्मिक अनुशासन और साधना), दम (इन्द्रियों का नियंत्रण) और कर्म (कर्तव्यपालन) पर टिकी होती है; वेद इसके अंग हैं और सत्य इसका आधार स्थान है–अर्थात् केवल ज्ञान जान लेना पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसे स्थिर और वास्तविक बनाने के लिए जीवन में अनुशासन, इन्द्रिय-नियंत्रण, सही कर्म और सत्य का पालन आवश्यक है, तभी साधक उस परम सत्य को सही रूप में धारण कर पाता है।...

ॐ सरल सार

केनोपनिषद एक गहरे सवाल से शुरू होता है: मन सोचता कैसे है, आँख देखती कैसे है, कान सुनते कैसे हैं? इसका उत्तर है कि इन सबके पीछे एक अदृश्य शक्ति है जिसे ब्रह्म कहा जाता है। यह ब्रह्म इन्द्रियों से नहीं दिखता, शब्दों में पूरी तरह व्यक्त नहीं होता और मन से पूरी तरह समझ में नहीं आता, लेकिन उसी के कारण सब कुछ कार्य करता है।

दूसरे खण्ड में ज्ञान का एक paradox बताया गया है—जो व्यक्ति सोचता है कि वह ब्रह्म को पूरी तरह जानता है, वह वास्तव में नहीं जानता; और जो मानता है कि वह पूरी तरह नहीं जानता, वही जानने के करीब है। इसका अर्थ है कि ब्रह्म अनंत है और मनुष्य की बुद्धि सीमित, इसलिए सच्चा ज्ञान विनम्रता और निरंतर जिज्ञासा में है, न कि अहंकार में।

तीसरे खण्ड में एक कथा के माध्यम से अहंकार को समझाया गया है। देवताओं को विजय मिलती है और वे उसे अपनी शक्ति मान लेते हैं, तब ब्रह्म एक यक्ष के रूप में प्रकट होता है। अग्नि और वायु अपनी-अपनी शक्ति का दावा करते हैं लेकिन एक साधारण तिनके पर भी असफल हो जाते हैं। अंत में इन्द्र को यह समझ आता है कि असली शक्ति ब्रह्म की है, जिससे यह शिक्षा मिलती है कि सफलता का वास्तविक स्रोत किसी उच्च शक्ति में है, न कि केवल व्यक्तिगत क्षमता में।

चौथे खण्ड में ब्रह्म के अनुभव को बताया गया है कि यह अचानक बिजली की चमक या पलक झपकने जैसा सूक्ष्म और क्षणिक अनुभव होता है। इसे बाहरी इन्द्रियों से नहीं पकड़ा जा सकता, बल्कि आंतरिक चेतना में अनुभव किया जाता है। इस अनुभव के लिए तप (अनुशासन), दम (इन्द्रिय नियंत्रण), सही कर्म और सत्य का पालन आवश्यक है। केवल ज्ञान पर्याप्त नहीं है, उसे जीवन में उतारना जरूरी है।

उपनिषद यह भी बताता है कि ब्रह्म को "तद्वनम्" अर्थात् सबसे प्रिय और आकर्षक मानकर उपासना करनी चाहिए। जो व्यक्ति इस सत्य को समझकर जीवन जीता है, उसमें स्वाभाविक शांति, संतुलन और आकर्षण आ जाता है और अन्य लोग भी उसकी ओर खिंचते हैं।

पूरे केनोपनिषद का सार यह है कि एक अदृश्य शक्ति सब कुछ संचालित कर रही है, उसे जानने के लिए अहंकार छोड़कर विनम्रता, साधना और अनुभव का मार्ग अपनाना आवश्यक है; ब्रह्म को देखा नहीं जा सकता, बल्कि उसे भीतर अनुभव किया जाता है, और वही अनुभव सच्ची शांति और ज्ञान की ओर ले जाता है।



If you like my work, please contact me at:
ajaytilanthe31@gmail.com